

नोट : गाथा ८ से १० तक के प्रवचन १९७०-७१ के वर्ष में उपलब्ध नहीं होने से यह प्रवचन सन् १९७३ के वर्ष में से लिये गये हैं। वहाँ के धारावाही प्रवचन नम्बर १७ तथा १८ हैं।

प्रवचन-११-ए

गाथा-८

बुधवार, असोज शुक्ल ७, दिनांक ०३-१०-१९७३

यह अष्टपाहुड़, इसमें दर्शनपाहुड़, पहला अधिकार। अब कहते हैं कि जो दर्शनभ्रष्ट हैं... उपोद्घात है न ऊपर? ज्ञानचारित्र से भ्रष्ट हैं, वे स्वयं तो भ्रष्ट हैं ही, परन्तु दूसरों को भी भ्रष्ट करते हैं, यह अनर्थ है... पहली तो यह बात है, इस अष्टपाहुड़ में, दर्शनपाहुड़ अर्थात् आत्मा सम्यग्दर्शनसहित आत्मा शुद्ध अखण्ड अभेद की अनुभूतिसहित प्रतीति और उसके स्वरूप का चारित्र-आचरण अर्थात् दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीन, उनकी भूमिका के योग्य उस अट्टाईस मूलगुण, पंच महाव्रत, अचेल आदि अट्टाईस

मूलगुण का विकल्प राग और नग्नपना, ये तीन होकर जैनदर्शन कहलाता है। भगवान का यह अभिप्राय है। जो सम्यग्दर्शन आत्मा का और उसका ज्ञान और उसका चारित्र और उसके साथ अट्टाईस मूलगुण व्यवहार से जो वीतराग ने कहे, ऐसा उसे विकल्प होता है और शरीर की नग्न दशा (होती है), उसे जैनदर्शन कहते हैं। सोमचन्द्रभाई!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन, वह जीव नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जीव, जीव की दशा। जीव, उसकी दशा और राग तथा नग्नपना, उसे जैनदर्शन कहते हैं, उसे जैनमत कहते हैं। मणिभाई!

जिसे मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र तीनों जिसे प्रगट हुए हैं और जिसे अट्टाईस मूलगुण का, पाँच महाव्रत आदि का विकल्प है, उस भूमिका के योग्य और नग्नमुद्रा वह धर्म की मूर्ति है और वह जैनदर्शन है और वह जैन का मत है। मणिभाई!

मुमुक्षु : मत अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिप्राय। वीतराग का अभिप्राय। ये तीन वस्तु होकर जैनदर्शन है। समझ में आया ? क्योंकि मूल तो ऐसा जो स्वरूप अनादि का था, उसमें से दुष्काल में भ्रष्ट हुए, उनके सामने यह बात है। बाबूभाई! आहाहा!

जिसे आत्मा अखण्ड पूर्णानन्द प्रभु, जो सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा ऐसा आत्मा; अन्यमति ने कहा, वह आत्मा ऐसा नहीं। ऐसा जो आत्मा अन्दर में स्वसन्मुख होकर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन की दशा (होती है) और वह आत्मा ऐसा, उसका ज्ञान और उस आत्मा में रमणता की वीतरागचारित्रदशा, वह जैनदर्शन अथवा वह निश्चयमोक्षमार्ग अथवा वह जिनमत, उसे जैनमत कहा है। उसके साथ उसे अट्टाईस मूलगुण आदि व्यवहार होता है, ऐसा भी व्यवहार होता है और जिसकी नग्नदशा होती है। अभ्यन्तर त्याग, बाह्य त्याग और अशुभ का त्याग और नग्नदशा, इसे यहाँ जैनदर्शन कहते हैं। मणिभाई! अकेले समकित को नहीं। यहाँ तो जैनदर्शन अर्थात् यह। इसकी श्रद्धा से जो भ्रष्ट हुए, ऐसा जो मार्ग अनादि का सनातन सत्य, उससे भ्रष्ट हुए और वस्त्र आदि रखकर मुनिपना मनवाने लगे, वे दर्शन से भ्रष्ट, ज्ञान से भ्रष्ट, चारित्र से भ्रष्ट, सबसे भ्रष्ट हैं। नवनीतभाई! ऐसा है। लोगों को कठिन लगता है। यह कहते हैं।

जे दंसणेसु भट्टा णाणे भट्टा चरित्तभट्टा य।
एदे भट्ट वि भट्टा सेसं पि जणं विणासंति ॥८॥

अर्थ – जो पुरुष दर्शन में भ्रष्ट हैं... इसके दो अर्थ। ऐसा जो जैनमत अनादि का मोक्ष का मार्ग और व्यवहार तथा निमित्त ऐसा होता है, ऐसे मार्ग से जो भ्रष्ट हुए और अन्दर के स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन (हो), उससे जो भ्रष्ट हैं, वे भ्रष्ट हैं। समझ में आया? तथा ज्ञान-चारित्र में भी भ्रष्ट हैं, वे पुरुष भ्रष्टों में भी विशेष भ्रष्ट हैं। आहाहा! अर्थ में थोड़ा लेंगे। ऐसा जो जैनदर्शन है, उससे तो श्रद्धा में भ्रष्ट हुए, परन्तु अपने माने हुए शास्त्र प्रमाण भी ज्ञान और चारित्र नहीं है, उनका माना हुआ, भाई! अर्थ में यह लिखा है। अर्थ में है न? सत्यार्थ श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र तो दूर ही रहा, जो अपने मत की श्रद्धा, ज्ञान,... सामान्य बात है न, इसलिए उसमें से निकाला है। उनके मत प्रमाण उनका जो चारित्र कहलाता है, उससे भी जो भ्रष्ट हैं। ठिकाना नहीं था, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य हुए, उससे पहले श्वेताम्बर मत निकल गया था। उसके सामने यह बात है।

मुमुक्षु : उसकी स्पष्टता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी स्पष्टता है। यह वीतराग का मार्ग सनातन मोक्ष का मार्ग। अनादि जैनदर्शन। अनादि कहो या दिग्म्बर दर्शन कहो, या मोक्षमार्ग कहो, निश्चय और व्यवहार तथा निमित्तपना नग्न का कहो, यह जैनदर्शन की पद्धति है। सोमचन्दभाई! इसे जैनदर्शन कहा है। अकेले समकित सहित को नहीं।

मुमुक्षु : अन्तर में से और बाह्य से दोनों।

पूज्य गुरुदेवश्री : है। हाँ, अन्तर में भी सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित वीतरागता प्रगट हुई है और बाह्य में उसके अट्टाईस मूलगुण और नग्नदशा, ऐसा जिसका आचरण व्यवहार से है, ऐसा सनातन जैनदर्शन अर्थात् वस्तु का दर्शन अर्थात् पदार्थ की मर्यादा की यह दशा थी। उसमें से जो भ्रष्ट हुए और अपनी कल्पना से पन्थ चलाया, वे जैनदर्शन से भ्रष्ट हैं। यह लोगों को कठिन (लगता है)। सबके साथ एकता रखो (ऐसा कहते हैं) परन्तु एकता किस प्रकार करना?

मुमुक्षु : अन्यमति तो जैन में से भी भ्रष्ट हैं ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो जैन में से भ्रष्ट, अन्य की तो बात भी कहाँ है ? आहाहा ! यह तो सनातन सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ जो सन्त का मोक्ष का मार्ग, उसमें रहा हुआ व्यवहार का विकल्प और उसमें अजीव की नग्नदशा का निमित्त, यह ऐसा जैनदर्शन होता है । वह धर्म की मूर्ति, वह धर्म की मूर्ति, वह जैनदर्शन की मूर्ति ! आहाहा ! यह जैनदर्शन की ऐसी प्रणालिका अनादि से थी, उसमें से जो भ्रष्ट होकर अपनी कल्पना से वस्त्र-पात्रसहित साधुपना माना, मनवाया, अपनी मान्यता से आत्मा की श्रद्धा बिना व्यवहार श्रद्धा को सम्यक् मनवाया, व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र, वे सब सत्यधर्म से भ्रष्ट हैं । आहाहा ! ऐसा मार्ग अनादि का है । यह कहीं (नया नहीं है) ।

यह यहाँ कहते हैं, जो ऐसे जैनदर्शन और सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं, वे तो ज्ञान और चारित्र से भी भ्रष्ट हैं क्योंकि शास्त्र की बातें... ऊपर बात आ गयी थी, शास्त्र की बातें पढ़े हुए हों, इसलिए बात तो करे, नवतत्त्व ऐसे हैं और वैसे हैं, परन्तु वह उनका ज्ञान सच्चे जैनदर्शन का स्वरूप यह था, उसमें से भ्रष्ट हुए, उनका ज्ञान भी सब मिथ्या है । समझ में आया ?

मुमुक्षु : सब ज्ञान मिथ्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब मिथ्या । एक-एक ।

मुमुक्षु : ग्यारह अंग और नौ पूर्व..

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्यारह अंग और नौ पूर्व का पठन मिथ्या । वह तो उस समय अभी था कहाँ ? उस समय था भी कहाँ ? यह तो गृहीत मिथ्यात्व की बात है । इसके पास तो था ही कहाँ तब ? कुन्दकुन्दाचार्य के समय । आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य पहले सौ वर्ष में यह मत पड़ गया । सनातन जैनदर्शन सर्वज्ञ वीतरागपरमात्मा ने प्रवाहरूप से जो कहा था, उस मार्ग से वहाँ बारह वर्ष के दुष्काल में भ्रष्ट हुए । भगवान कुन्दकुन्दाचार्य पुकारते हैं, भाई ! ऐसा मार्ग तो वीतराग का है और उसे हम जैनदर्शन कहते हैं । उसे हम धर्म की मूर्ति कहते हैं । आहाहा ! अकेली नग्नदशा और अट्टाईस मूलगुण, ऐसा नहीं तथा अकेला निश्चय और ऐसा व्यवहार न हो, ऐसा भी नहीं । आहाहा ! उसे यहाँ जैनदर्शन (कहते हैं)

यह दर्शनपाहुड़ है। दर्शनपाहुड़ अर्थात् यह दर्शन। पश्चात् इसके अन्तर्भेद में सम्यग्दर्शन आता है।

ऐसा जैनदर्शन है, अनादि का सनातन वस्तु का स्वरूप है—ऐसी जिसे श्रद्धासहित स्व का आश्रय लेकर जिसे सम्यग्दर्शन हुआ है, वह सम्यग्दृष्टि है। भले उसे ज्ञान विशेष न हो, चारित्र न हो तो भी वह दर्शन से भ्रष्ट नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग है। दिगम्बर जैन में जन्मे, उन्हें भी खबर नहीं है। आहाहा! यहाँ तो सनातन अनन्त केवली महाविदेह में या यहाँ भरत-ऐरावत में अनन्त केवली ऐसा जैनदर्शन का, जैनमत का (स्वरूप वर्णन करते हैं)। पहली गाथा में यह कहा था न? 'दंसणमग्गं' पहली गाथा। दर्शन का मार्ग। दर्शन का मार्ग यह है। समकित मार्ग, ऐसा वहाँ नहीं। पहली गाथा में है। है, पहली गाथा, देखो! पहली गाथा है न? 'दंसणमग्गं' है न? 'दंसणमग्गं वोच्छामि' तीसरा पद है। यह दर्शन (अर्थात्) मार्ग की बात है। अकेले समकित की नहीं। दर्शन का मार्ग कहूँगा। जैनदर्शन का अभिप्राय और मत जो है, वह हम कहेंगे। समझ में आया? दूसरी में यह लिया 'दंसणमूलो धम्मो' धर्म का मूल दर्शन है। ऐसा दर्शन निश्चय और व्यवहारवाला, वह धर्म का मूल है। ऐसी जिसे श्रद्धा हो और वह श्रद्धा होने पर भी विशेष ज्ञान न हो, चारित्र न हो तो भी वह सम्यग्दृष्टि है। वह सम्यग्दृष्टि है, वह धर्म के पन्थ में है। समझ में आया? ऐसे धर्म से बाह्य से भी जो भ्रष्ट हुए और ऐसे मत को न स्वीकार कर अपने मत की बातें चलायीं, वे सब जैनदर्शन से विरुद्ध हैं। सोमचन्दभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं, देखो!

कई तो दर्शन सहित हैं, ... है? दूसरी लाईन। सम्यग्दर्शनसहित हैं। ऐसा जैनमत है, ऐसी श्रद्धा है और आत्मा के आश्रय से दर्शन हुआ है। ऐसे दर्शनसहित हैं। किन्तु ज्ञान-चारित्र उनके नहीं है... विशेष ज्ञान, ऐसे समझाने की शक्ति, ऐसा न हो। क्षयोपशम ज्ञान विशेष न हो, परन्तु वह सम्यग्दर्शनसहित है। ऐसा जो जैनमत अनादि का है, उसे मानता है और उसका ज्ञान रखकर स्व का आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन हुआ है, वह जीव भले दर्शनसहित हो और ज्ञानरहित हो। ज्ञानरहित का अर्थ विशेष ज्ञान न हो और चारित्र भी न हो तो भी वह दर्शनसहित तो है। बाबूभाई! इन्होंने ऐसा लिया है न! पूरी शैली (ऐसी है)।

वैसे तो दर्शनपाहुड़ अर्थात् समकितपाहुड़, सूत्रपाहुड़ अर्थात् ज्ञानपाहुड़ ऐसे चारित्र ले परन्तु यहाँ, कुन्दकुन्दाचार्य का यह हृदय है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जो धर्म के स्तम्भ, तीसरे नम्बर में आये—मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी... आया न? मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। वे स्वयं फरमाते हैं, ओहो! ऐसा जो जैन का अभिप्राय और मत था कि चैतन्य भगवान के आश्रय से दर्शन, उसके आश्रय से ज्ञान और उसके आश्रय से लीनता और यहाँ पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ नहीं हुए, इसलिए साधक जीव को... रमणीकभाई!

यह अट्टाईस मूलगुण कर्मचेतना है। इसका प्रश्न सवेरे हुआ था। ज्ञानचेतना है और जितना राग है, वह कर्मचेतना है और जितना राग है, उतना कर्मफलचेतना—दुःख का वेदन भी है। सवेरे रास्ते में प्रश्न था, भाई! ऐसा कहे, ज्ञानचेतना और कर्मचेतना...? दृष्टि की प्रधानता का जहाँ कथन हो, वहाँ कर्म और कर्मफलचेतना धर्मी को नहीं होती, यह स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से कथन है और उसके ज्ञान की पर्याय देखने पर, पर्यायनय से देखने पर मुनि को छठवें गुणस्थान में भी पंच महाव्रत के विकल्प हैं, उतनी कर्मचेतना है और उसे—दुःख को वेदते हैं, उतनी कर्मफलचेतना है। आहाहा!

कर्मचेतना और कर्मफलचेतना के भी दो प्रकार हैं। एक तो आनन्दमूर्ति परमात्मा स्वयं है, उसका जो शुद्धोपयोग हुआ, वह शुद्धकर्मचेतना। वह शुद्धकर्मचेतना है। शुद्ध परिणाम हुए न? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतराग परिणति हुई, वह शुद्धकर्मचेतना, शुद्धकर्मचेतना है। वीतरागी परिणामरूपी कार्य में चेता है और उस समय आनन्द का वेदन है, उतनी शुद्धकर्मफलचेतना है। धीरुभाई!

मुमुक्षु : कार्य है कर्मचेतना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्य - कर्म है न, उतना राग है न? और यह शुद्ध भी कार्य है न? यह तो वीतरागमार्ग, बापू! यह तो कहीं साधारण बात नहीं है। दिगम्बर दर्शन, वह कहीं कल्पित नहीं है, वह कहीं पक्ष नहीं है, वस्तु की यह स्थिति है। समझ में आया? वस्तु का प्रकार ही ऐसा है। उसे यहाँ दिगम्बर दर्शन कहते हैं, उसे यहाँ जैनदर्शन कहते हैं। समझ में आया? क्या आया?

यह आत्मा अपनी श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति का जो परिणमन है, वह परिणमन का

कार्य है। कार्य है, इसलिए उसे शुद्धकर्मचेतना कहा गया है और उस कर्मचेतना के काल में उस शुद्ध के आनन्द का वेदन है, इसलिए शुद्ध कार्यचेतना का फल शुद्ध आनन्द का वेदन भी उसे है। वह कर्मफलचेतनावन्त है। अब उस समय जो पंच महाव्रत आदि के परिणाम हों या समकृति को नीचे तीव्र रागादि हों तो वे उसे अशुद्धकर्मचेतना है और जितनी अशुद्धता है, उतना उसे वेदन है, दुःख है।

मुमुक्षु : शुभभाव है इसलिए...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव, वह अशुद्धचेतना है और उसका फल दुःख है। समझ में आया ? जितना शुभभाव है, उतनी अशुद्धचेतना है। अशुद्धचेतना कर्मचेतना और उतना उसे दुःख का वेदन है।

मुमुक्षु : दुःख का वेदन भासित होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों साथ ही हैं, ज्ञान दोनों को जानता है। दर्शन की मुख्यता से कथन हो, तब तो स्वभाव का साधन है, ऐसा बताते हैं। तब उसे कर्म और कर्मफलचेतना नहीं है, ऐसा बताते हैं परन्तु वापिस ज्ञाननय से-पर्यायनय से बतावे, तब जितने अंश में राग है और जितने अंश में राग का फल दुःख है, वह उसमें है। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म! लोगों को हाथ में नहीं आया और बाहर में भटकाभटक (करते हैं)। आहाहा! शान्तिभाई! यह तो तुम्हारा प्रश्न था, उसके ऊपर से यह सब चला है। कपिल कोटडिया के साथ इन्हें चर्चा हुई होगी। ऐसा कि ज्ञानचेतना न हो, तब तो विकल्प है। वह सब कर्मचेतना ही समकृति को होती है। मिथ्या बात है। धर्मी को ज्ञानचेतना उपयोगरूप न हो, अलग बात है परन्तु ज्ञान का अन्दर वेदन है, ऐसी ज्ञानचेतना तो निरन्तर होती है। आहाहा! धर्मी युद्ध में खड़ा हो या विषय की वासना के काल में खड़ा हो, तथापि उसे ज्ञानचेतना तो निरन्तर है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। झूठ बात है, खोटी बात है। उसे कहाँ खबर है। निर्विकल्पदशा के समय तो उपयोगरूपी ज्ञानचेतना है और सविकल्प में आया, तब लब्धरूप ज्ञानचेतना है। समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने

तो सत्य जैसा केवली का कहा हुआ था, उसे जगत को प्रसिद्ध किया है। दुनिया को जँचे, न जँचे, स्वतन्त्र चीज़ है। आहाहा! अरे! ऐसे मनुष्यकाल के भव में ऐसी बात इसे सुलटी नहीं जँचे तो कहाँ जँचायेगा? कहाँ जाएगा? किस काल में (जाएगा)? भाई! आहाहा!

एक डिब्बा में कल देखा, भाई! एक कणी रह गयी थी। पेड़ा का कण अन्दर (रह गया होगा) उसमें दो-तीन ईयल पड़ी। कौने में पड़ी रही।... अब ऊपर सब था... टीकड़ी कहलाती है न? पीपरमेंट। टीकड़ी नहीं आती? पीपर, इतनी-इतनी सफेद, लाल। ऐसी सौ-डेढ़ सौ टीकड़ी ऊपर पड़ी थी। वे ऐसे बाहर निकाली, वहाँ कौने में एक पतली ईयल, पतली डोरा जैसी... ओहोहो! ऊपर डिब्बा बन्द। किस योनि में उपजा! आहाहा! उसे श्वास लेने का क्या स्थान? किस प्रकार... आहाहा! डिब्बा इतना आता है न? कल डिब्बे बाँटे थे न? वहाँ दो-तीन पड़े होंगे। उसमें लड़कों के लिये दे जाते हैं न, अन्दर साफ नहीं हुआ होगा, कौने में पड़े रहे इसलिए। उसमें इतनी पतली-पतली डोरे जैसी लाल लट। बारीक बैठी हुई। आहाहा! कहाँ से आत्मा वहाँ आया? और इतने लट में भी पूर्णानन्द प्रभु वस्तुस्वभाव से तो पूर्ण है, हों! उसकी पर्याय में इतनी हीनता कि वहाँ कौने में इतना टुकड़ा रह गया होगा, उसके ऊपर दूसरी चीज़ आ गयी, वहाँ उत्पन्न हुई। आहाहा! देखो न! सहज ही। कौन ईश्वर, कौन करे और कहाँ है? आहाहा! इस प्रकार जहाँ लिया, वहाँ अन्दर हलन-चलन किया। भाई ने कहा, नहीं?कहा न? दूसरे ने कहा, लट है। ओहोहो! भगवान! कहाँ तेरी अवस्था? किस जगह उत्पन्न हुआ यह? सिर पर इतना बोझ। इसने नहीं दबाया हो। सिर पर इतनी (जगह) होती है न? इसलिए उसके बीच पोल रह गयी हो एक कौने में? आहाहा! किसका इसमें अभिमान करना? आहाहा! ऐसी दशाओं में अनन्त बार गया, भगवान! ऐसी स्थिति में अनन्त बार गया। यह मिथ्यात्व का फल है। यह सब मिथ्यात्व का फल है।

यह यहाँ परमात्मा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भगवान! जो कोई दर्शन से भ्रष्ट है, वह तो ज्ञान और चारित्र दोनों से भ्रष्ट है परन्तु कोई दर्शन से भ्रष्ट नहीं, उससे सहित है और जैनदर्शन का जो यह स्वरूप है, ऐसा मोक्षमार्ग, उसे वह मानता है, भले उसे ज्ञान और चारित्र विशेष न हो तो वह दर्शनभ्रष्ट नहीं है, वह मार्ग में है। आहाहा! नवरंगभाई! 'ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री वीतराग।' तीन लोक के नाथ के मुख से ऐसा निकला, भाई!

आहाहा! अरे! इसे खबर भी नहीं होती कि वीतराग का मार्ग क्या है। खबर बिना उसकी श्रद्धा कहाँ से आयेगी। समझ में आया ?

आहाहा! देखो तो सही! तीन लोक का नाथ अन्दर परमात्मस्वरूप शक्ति है। क्षेत्र भले छोटा हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। उसका अन्तरभाव अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान का सत्त्व है। वह जीव का सत् का वह पूर्ण सत्त्व है। आहाहा! उसकी पर्याय में इतनी हीनता कि ऐसे लट जैसी योनि में कहाँ जाकर उत्पन्न हुआ! आहाहा! यह चौरासी में उपजना अनन्त बार मिथ्यात्व के कारण हुआ है। शास्त्र का ज्ञान भी किया। व्रत और नियम ऐसे पालन किये कि चमड़ी उतारकर नमक छिड़के (तो भी) क्रोध न करे। उससे क्या हुआ? वह कहीं मूल चीज़ नहीं है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। पहले तो यह कहा, दर्शन से भ्रष्ट है वह तो ज्ञान और चारित्र्य तीनों से भ्रष्ट है। अब, कई तो दर्शन सहित हैं,... ऐसा जैनदर्शन का मार्ग है, ऐसी उसे श्रद्धा है और तदुपरान्त स्व के आश्रय से सम्यक्त्व प्रगट हुआ है। समझ में आया? आहाहा! ज्ञान-चारित्र्य उनके नहीं है... ज्ञान ऐसा विशेष न हो कि सबको समझा सके या विस्तार कर सके, न हो। अन्तर आत्मा का दर्शन हुआ है। आहाहा! और चारित्र्य न हो। अभी चारित्र्य-वीतरागता जो चाहिए, छठवें (सातवें गुणस्थान) की मुनि की, ऐसी दशा न हो। स्वरूपाचरण हो। समझ में आया ?

तथा कई अंतरंग दर्शन से भ्रष्ट हैं... कितने ही तो अन्तर श्रद्धा से भ्रष्ट हैं। ऐसा जैनमत है और ऐसा सम्यग्दर्शन आत्मा के आश्रय से होता है, उससे भ्रष्ट हैं। तथापि ज्ञान-चारित्र्य का भलीभाँति पालन करते हैं... शास्त्र का ज्ञान और व्रतादि के नियम भलीभाँति पालन करते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह दर्शन की महिमा तो देखो! यह दर्शन न हो, भ्रष्ट हुआ हो, जैनमत में रहे हुए भी अन्दर भ्रष्ट हुए हों। वे ज्ञान-चारित्र्य पालते हों, व्रत और नियम और शास्त्र का ज्ञान (होवे) तो भी वे भ्रष्ट ही हैं।

और जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य इन तीनों से भ्रष्ट हैं,... दर्शन से भ्रष्ट, ज्ञान से भ्रष्ट, चारित्र्य से भ्रष्ट। आहाहा! वे तो अत्यन्त भ्रष्ट हैं;... गजब बात, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : हमारे लिये क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पहिचान करके श्रद्धा करना, यह तुम्हारे लिये यह है ।

मुमुक्षु : आपकी श्रद्धा तो हमको है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्रद्धा नहीं, अन्तर की श्रद्धा । यह क्या कहा ? कहा न ? अंतरंग दर्शन से भ्रष्ट हैं... ऐसा कहा न । आहाहा ! यह उलझन की बात नहीं है । यह तो ऐसा मार्ग है, (ऐसा वर्णन करते हैं) । पूर्णानन्द प्रभु पर्याय में ऐसा होता है । अशुद्धता, अशुद्ध राग, अशुद्ध का वेदन, वह तो ज्ञान को भी होता है परन्तु ज्ञानी को आत्मा के भानसहित ज्ञानचेतना में ऐसा होता है । अज्ञानी को अकेला राग और राग के दुःख का फल का वेदन है । अकेला राग का कार्य और राग का वेदन अज्ञानी को है । केवलज्ञानी को अकेला ज्ञान और आनन्द का वेदन है, अशुद्धता का कार्य और अशुद्धता का वेदन केवली को नहीं है । वह थोड़ा सा अशुद्ध है, यह बात अलग है । ज्ञान तो जानता है । अभी केवली को भी योग कम्पन की थोड़ी सी अशुद्धता रही है न ? उसे ज्ञान जानता अवश्य है । दूसरे की बात । वे तो केवली हैं । दूसरे को उतनी अशुद्धता है । आहाहा ! और चौदहवें गुणस्थान में भी अभी अशुद्धता का अंश है, इसलिए उन्हें असिद्ध कहा है । असिद्ध / संसारी कहा है । आहाहा ! इतना अशुद्ध अंश है न ? यह तो त्रिकाल सर्वज्ञ से कहा हुआ मार्ग है । एक समय-समय के पहलू की नाड़ी पकड़ी है । आहाहा ! अरे ! ऐसी बातें सुनने में कहाँ है ? आहाहा ! ऐसा मार्ग भगवान का है । भगवान का अर्थात् कि तेरा । तेरा मार्ग ही ऐसा है । आहाहा !

वे स्वयं तो भ्रष्ट हैं ही, परन्तु शेष अर्थात् अपने अतिरिक्त अन्य जनों को भी नष्ट/भ्रष्ट करते हैं । ऐसी प्ररूपणा करके, श्रद्धा करके दूसरे जीवों को भ्रष्ट करते हैं । भ्रष्ट तो उसके कारण वह होता है, (परन्तु) व्यवहार से कहा जाता है न । आहाहा ! स्वयं का वेश खोटा, नग्नपना न हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान न हो और यह भी एक मार्ग है । पंचम काल में उग्र पालन न कर सके तो यह भी एक मार्ग है, ऐसा करके स्वयं भ्रष्ट (हुए हैं) और दूसरों को भ्रष्ट करते हैं । आहाहा !

जनों को भी नष्ट/भ्रष्ट करते हैं । बड़ी विद्वत्ता सीखे हों, शास्त्र तो पढ़े हों, क्षयोपशम हो । (इसलिए कहे), ऐसा भी मार्ग है, यह भी मार्ग है । यह शुभराग भी शुद्धता का कारण है । क्षयोपशम ज्ञान, वह क्षायिक का कारण है, उससे क्षायिक होगा, ऐसा कहते

हैं। श्वेताम्बर में ऐसा कहते हैं। शुभभाव आदि क्षयोपशम भाव है, उससे क्षायिक होगा। अरे रे! समझ में आया? यह दिगम्बर जैन में भी ऐसा मानते हैं, वहाँ (दूसरे का) प्रश्न क्या? आहाहा! जो राग पृथक् है, दोष है, उससे निर्दोषता हो, वह जैनदर्शन नहीं है। होता अवश्य है; जब तक वीतरागता न हो, तब तक सन्तों को, धर्मी को, ज्ञानी को भी भक्ति का भाव, पूजा का भाव, दया का भाव, व्रत का भाव होता अवश्य है।

मुमुक्षु : उसे परम्परा कारण कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा कारण वह तो उसे अशुभ टला है और इसे (शुभ को) टालेगा। यह कारण नहीं होता। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! सम्यग्दृष्टि को शुभभाव में अशुभ टला है और अब वह शुभ को टालकर शुद्ध में जाएगा, उसे परम्परा कहा है। अकेले मिथ्यादृष्टि को शुभ परम्परा कहाँ था? वह तो वहीं पड़ा है। आहाहा! वीतराग मार्ग परमेश्वर जिनेन्द्रदेव के भाव समझना बहुत कठिन है। वहाँ बहुत पुरुषार्थ है, यह कोई साधारण बात नहीं है। बाहर का पैसा-वैसा करोड़ों और लाखों पूर्व के पुण्य के कारण दिखायी दे, वहाँ कोई चतुराई काम नहीं करती। ऐसा होगा या नहीं? मणिभाई! बाह्य पैसा में चतुराई काम करे?

मुमुक्षु : कुछ नहीं करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ धूल भी नहीं करे। इसके ससुर का मिला तो वहाँ कहाँ चतुराई थी?

मुमुक्षु : लोगों में तो चतुराई की छाप पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग तो मूर्ख-पागल हैं। चतुर कहलाते हैं। सोमचन्दभाई के जाम्बूडी के मालिक। लो! ऐसा कोई कल कहता था। जैसे वह बामणवाड़ावाले, चन्दुभाई। ऐसा कोई कल कहता था। बामणवाला नहीं? चन्दुभाई। नरम व्यक्ति है। गाँव में सोमचन्दभाई की छाप ऐसी है।

मुमुक्षु : दस गाँव के....

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो, यह कहते हैं। वह कुछ महिमा भी नहीं और वह कुछ अधिकता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वह साधन होवे तो यहाँ आया जाए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी साधन नहीं है। आया क्या जाए? साधन तो अन्तर के स्वभाव की शुद्ध पर्याय प्रगट हो, वह साधन है। आहाहा! उसकी श्रद्धा में तो निर्णय करे। आहाहा! पहले ऐसे बीज तो बोये। आहाहा!

मुमुक्षु : इस बीज का वृक्ष कितना बड़े ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वृक्ष वह तो इसकी दृष्टि के प्रमाण में (मिले)। इसकी दृष्टि का कैसा कहाँ सन्मुख का जोर कितना है ? परन्तु यह तो बीज बोया, वह फलेगा ही, यहाँ तो एक ही बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : कितने वर्ष में।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कुछ वर्ष-वर्ष नहीं। यह तो फलेगा ही। जिसे चैतन्य शुद्ध आनन्द की जहाँ रुचि हुई, फले बिना रहेगा ही नहीं, उसे अनुभव होगा, केवलज्ञान लेगा। अल्प काल में लेगा ही। आहाहा! समझ में आया? इसकी स्वयं की साक्षी आना चाहिए न? समझ में आया? अहो! ऐसा निर्मल प्रभु का मार्ग, उसे लोगों ने यह क्रिया करो और यह क्रिया करो, इससे होगा (ऐसी प्ररूपणा करके) वीतरागमार्ग को भ्रष्ट कर दिया। यद्यपि मार्ग है, वह मार्ग है, उसे कहीं कलंक नहीं लगता, परन्तु माननेवालों ने स्वयं को कलंक लगाया। आहाहा!

भावार्थ ह्व यहाँ सामान्य वचन है,... सामान्य वचन अर्थात् समझे न? दर्शन, ज्ञान, चारित्र से भ्रष्ट। इसलिए ऐसा भी आशय सूचित करता है कि सत्यार्थ श्रद्धान,.. सच्ची श्रद्धा, सच्चा ज्ञान, सच्चा चारित्र तो दूर ही रहा,... सच्चा सम्यग्दर्शन, सच्चा सम्यग्ज्ञान, सच्चा चारित्र, वह तो एक ओर रहो परन्तु जो अपने मत की श्रद्धा, ज्ञान, आचरण से भी भ्रष्ट हैं,... परन्तु उन्होंने माना हुआ भाव है, उसके चारित्र के वर्तन का, उसमें जो लेख है, उससे भी वे भ्रष्ट हैं। तब बहुत पोल चलती थी। उसमें भी। करणानुयोग का ज्ञान हो तो अधःकर्मी दोष लगता नहीं। यह क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : वह तो मूल गाथा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न, परन्तु वस्तु यह है। ऐसा भ्रष्ट कहाँ से लाये ? इसलिए यह

कहते हैं, उन्होंने माना हुआ। जैनदर्शन से आगे निकल गये, भ्रष्ट हुए, उनका माना हुआ प्रमाणज्ञान और चारित्र का भी ठिकाना नहीं है। तब ऐसे भी थे न! ऐई! भाई ने नहीं लिखा ?

मोक्षमार्गप्रकाशक में पाँचवें अध्याय में आता है। उनके कहे हुए शास्त्रप्रमाण उनका वर्तन कहाँ है ? यह आता है, भाई! पाँचवें अध्याय में आता है। स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी जैन का जहाँ लिया है, (वहाँ आता है)। उनमें कहे प्रमाण वर्तन कहाँ है, वह यह बात कहना चाहते हैं। समझ में आया ? ऐसा जैनदर्शन, वीतरागमार्ग, दिगम्बर मार्ग उससे तो भ्रष्ट हुए परन्तु उसमें कहे हुए उनके प्रमाण में भी व्रत से भ्रष्ट हैं। उनका भी कहाँ ठिकाना है। आहाहा! उनके लिए बनाया हुआ आहार ले, अधःकर्मी ले, उद्देशिक ले और...

मुमुक्षु : उस प्रकार का द्रव्यानुयोग का ज्ञान है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान धूल में भी (नहीं)। समकिति को द्रव्यानुयोग का ज्ञान नहीं ? मुनि होवे उसे तत्त्व का ज्ञान नहीं ? तत्त्वज्ञान बिना कौन जीव होगा ? चौथे, पाँचवें, छठवें (गुणस्थान में) ? उसे नहीं चलता। उसके लिए कण भी बनाया हो, चौका करके (बनाया हो) बिल्कुल मार्ग नहीं है। जैन नहीं है। हरजीवनभाई!

मुमुक्षु : श्रावक जैसे मुनि होते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होगा ? नहीं, नहीं, नहीं। श्रावक तो अपनी श्रद्धा-दृष्टि रख सकता है। यह कहा है वहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक में। वह यही प्रश्न है परन्तु श्रावक तो हो सकता है। चारित्र न हो, व्रत न हो, अष्ट मूलगुण हो और समकित हो तो श्रावक हो सकता है। आहाहा! मुनिपना ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा! है न, उसमें यह तो उसमें लिखा है न, मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है। टोडरमलजी ने सबकी नाड़ी पकड़ी है।

मुमुक्षु : अध्यात्म की...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बहुत जोरदार काम किया है! ओहोहो! पूरा हुआ होता, तब तो... परन्तु इसमें भी मूल रकम तो सब आ गयी है। सबकी नाड़ी पकड़ी है। तेरी नाड़ी ऐसे मन्द चलती है। आहाहा! दिगम्बर सनातन सत्य में आये हुए और संस्कारी जीव (थे)। सत्यश्रद्धा, वीतराग का सर्वज्ञ का जो मार्ग... आत्मा का मार्ग है, वह सर्वज्ञ का मार्ग

है। आहाहा! ऐसे मार्ग से तो भ्रष्ट हुए परन्तु उनके अपने माने हुए शास्त्र और उनके आधार से वे भ्रष्ट हैं। उनके व्रत के पालन का भी कहाँ ठिकाना है, ऐसा कहते हैं। ऐई! चेतनजी! आहाहा! किसी के लिये नहीं, बापू! किसी के पक्ष का विरोध करके निन्दा करना, ऐसा नहीं। यह वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? मार्ग ही ऐसा है, वहाँ दूसरा क्या हो?

मुमुक्षु : उदय सुख का कारण है? पंचम काल है न प्रभु?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख-दुःख कुछ नहीं। पंचम काल अर्थात् क्या? हलुवे में आटे की जगह किसी ने धूल डाली? यह पंचम काल है। घी के बदले पेशाब डाला किसी ने? गुड़ के बदले कीचड़ डाला किसी ने? यह पंचम काल का हलुवा है। चौथे काल के हलुवे में मिठास में अन्तर होगा परन्तु वस्तु में अन्तर नहीं होता। मार्ग ऐसा है। आहाहा! कहा था न?

एक व्यक्ति ने पूछा था कि इस उद्देशिक आहार का स्पष्टीकरण होवे तो बहुत अच्छा हो। ऐसा स्पष्टीकरण पूछा उद्देशिक आहार। उनका कहने का आशय ऐसा था कि श्रावक बनावे और उसमें कुछ कहने का नहीं तो उसे दोष नहीं लगता, ऐसा होवे तो बहुत समाधान हो। मैंने कहा, अभी परमात्मा का विरह पड़ा है और उनके पीछे ऐसा किया, बापू! यह शोभा नहीं देता, भाई! श्रावक क्षुल्लक के लिये, साधु के लिये यह चौका करते हैं न? उसमें कहीं ऐसा होवे तो बहुत अच्छा हो जाए। यह दोष उसे न लगे। क्योंकि वह तो गृहस्थ करता है न! बिल्कुल खोटी बात है, बापू! आहाहा! द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी नहीं, बापू! द्रव्यलिंगी साधु तो नहीं परन्तु द्रव्यलिंगी क्षुल्लक भी मैं नहीं मानता। वे क्षुल्लक थे, वहाँ सुनते थे। किसी के लिये-व्यक्ति के लिये हमारा कुछ नहीं है। वस्तु की यह स्थिति है। भगवान के विरह में, केवली परमात्मा के विरह में उसे बदल डालना, दूसरा रूप देना-ऐसा नहीं होता। भाई! समझ में आया? चारित्र न पलता हो तो चारित्र नहीं है, ऐसा मानना परन्तु चारित्र न पलता हो और चारित्र है, ऐसा मानना, (वह तो मिथ्यात्व है)। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो यह कहते हैं सत्यार्थ श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र तो दूर ही रहा, जो अपने मत की श्रद्धा, ज्ञान, आचरण से भी भ्रष्ट हैं, वे तो निर्गल स्वेच्छाचारी हैं। देखो! अपने को रुचे, उस प्रकार से चलते हैं, ऐसा कहते हैं। बहुत ऐसा चलता है, हों! वे स्वयं

भ्रष्ट हैं, उसीप्रकार अन्य लोगों को उपदेशादिक द्वारा भ्रष्ट करते हैं... बाहर में आचरण भी ऐसा लगे, ओहो! त्यागी हुए, हजारों रानियाँ छोड़ी, यह छोड़ा और उपदेश में भी यह आता है। उसके द्वारा दूसरों को भ्रष्ट कर डालते हैं। बड़े करोड़पति थे, अरबोंपति थे, वे साधु हुए हैं। क्या हुआ, हुए उसमें? श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र का तो ठिकाना नहीं है। क्या छोड़ा उसने? आहाहा! पहले मिथ्यात्व छोड़ना चाहिए, वह तो छोड़ा नहीं। इसकी तो उसे खबर भी नहीं कि मिथ्यात्व छूटे तो क्या होगा? आहाहा! और राग छूटे तो चारित्र की आनन्ददशा कैसी आती है? ऐसी तो खबर नहीं। समझ में आया? वह अपने बाह्य आचरण और उपदेश द्वारा स्वयं तो भ्रष्ट है, परन्तु दूसरे को भ्रष्ट करता है। आहाहा!

मुमुक्षु : गृहीत मिथ्यात्व...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह गृहीत मिथ्यात्व ही है।

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं सच्चे देव को सच्चे गुरु को सच्ची मूर्ति को मानते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं मानता। वह तो मानता ही नहीं उन्हें। वे तो सच्चे हैं, उनसे विपरीत होकर निकले, उसमें कहा हुआ भी वह नहीं मानता और आचरण नहीं करता, ऐसा कहते हैं। सच्चे देव तो अरिहन्त त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा, जिन्हें आहार नहीं होता, पानी नहीं होता, रोग नहीं होता। वहाँ तो रोग ठहराया है, केवली को क्षुधा, आहार-पानी ठहराया है। अरे! ऐसा देव का स्वरूप होगा?

मुमुक्षु : णमोकार मन्त्र तो दोनों का एक ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : णमोकार मन्त्र समान हो, शब्द में समान (होवे) उसमें क्या हुआ? भाव में बड़ा पूर्व-पश्चिम जितना अन्तर है। यह तो बौद्ध में भी नहीं आता? रामजीभाई तो बहुत बार कहते हैं। ज्ञान और समाधि, ये शब्द आते हैं परन्तु तो क्या है? हो, भाव में अन्तर है। शब्द आवें उसमें क्या हुआ? आहाहा!

यह तो णमो अरिहन्ताणं। जिसने कर्मरूपी शत्रु को जीता और जिसने जैनपना केवलज्ञान प्रगट हुआ, जिसका शरीर परमौदारिक हो गया। जिसे रोग गन्ध में नख में न हो, उसे आहार-पानी और औषध कभी नहीं होता। उसे आहार-पानी और औषध ठहराना और आहार ठहराना (उसमें तो) व्यवहार की श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं है।

मुमुक्षु : वेदनीय कर्म का उदय..

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं होता। वेदनीय कर्म को जला-जलाकर, बदल-बदलकर यहाँ आये हैं। असाता को टालते.. टालते.. टालते.. कितनी धारावाही करते-करते यहाँ आये हैं। ऐसी असाता उन्हें नहीं होती। भाई! मार्ग तो यह है। उन्हें परीषह कहा है न? परीषह तो एक उदय है, इतनी अपेक्षा से कहा है। शरीर में रोग हो, आहार लेने जाए और औषध आकर खाये, बिल्कुल केवली का स्वरूप नहीं जानते।

मुमुक्षु : परमौदारिक शरीर कहाँ रहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कहते नहीं। परमौदारिक नहीं कहते। उन लोगों में परमौदारिक नहीं है। औदारिक है, यह सब अन्दर लिखा है। सुन न!

मुमुक्षु : आधा अंग... होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आधा भी नहीं होता। यह है न, खबर है न, अरे! बापू! यह मार्ग अलग, बापू! तेरा तर्क वहाँ काम नहीं आता। वस्तु का स्वभाव हो, वहाँ तर्क क्या काम आवे? आहाहा!

परम औदारिक शरीर। तीर्थकर तो जन्मते हैं, तब से उन्हें आहार होता है, निहार नहीं होता, निहार नहीं होता। आहाहा! तीर्थकर किसे कहें! जिन्हें जन्म से आहार होता है, मल-मूत्रादि नहीं होते। महापवित्रता लेकर आये हैं, पुण्य-प्रकृति लेकर आये हैं।

मुमुक्षु : उन्हें शरीर की मलिनता....

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे किसकी? आहाहा! तीन ज्ञान लेकर, क्षायिक समकित लेकर आये हैं और परम औदारिक शरीर तो पहले से माता के गर्भ में से है। बापू! यह तो वस्तु की मर्यादा है। यह कोई पक्ष की बात है, ऐसा नहीं है। दिगम्बर ऐसा कहते हैं और हम ऐसा कहते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : उनके शास्त्र में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा हो तो सब कल्पित लिखा है, कल्पित बनाया है। क्या हो? भगवान के नाम से चढ़ाया। लोग शंका नहीं कर सके। शंका करे तो भगवान में शंका की कहा जाए। अरे...! बाँधकर जगत को मारा है।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर स्वयं हैं। हमारा मार्ग तो अनादि का ऐसा है। उससे तो भ्रष्ट हुए परन्तु उनमें कहे हुए उनके व्रत और चारित्र्य का भी ठिकाना नहीं होता। वह तो स्वयं को भ्रष्ट किया है। दूसरे जीवों को स्वयं का पुण्य आदि का दिखाव अधिक हो तो उपदेशादिक कहकर भ्रष्ट करते हैं। आहाहा! अरे रे! कहाँ भाई! कल भाई लट देखकर ऐसा हुआ... आहाहा! अरे रे! कहीं कौने में एक टुकड़ा इतना होगा। साफ नहीं हुआ होगा। उसमें कौने में लट पड़ी। आहाहा! कहाँ उसकी उत्पत्ति स्थान? कहाँ से आया?

मुमुक्षु : वह तो रुपये में लट आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो लट कहते हैं, परन्तु वह कुछ अन्दर हो, उसमें आवे। कचरा हो उसमें आवे। काल-बाट (गन्दगी) होवे न जरा तो उत्पत्ति स्थान हो। यह तो कल नजरों से देखा। डिब्बे में कौने में नीचे होवे न? कणि पड़ी रह गयी होगी साफ करते-करते। आहाहा! अरे रे! ऐसे अवतार ऐसे जन्म और ऐसे फल! बापू! उससे उभरने का मार्ग तो यह है। समझ में आया? कहीं शरीर ठीक मिला और पैसे ठीक मिले तो हम कुछ आगे बढ़े। ऐसा मानता है, वह आत्मा को हीन कर डालता है। बाहर की अधिकता से आत्मा अधिक हुआ, ऐसा माननेवाला आत्मा को हीन मार डालता है। आहाहा!

शरीर सुन्दर, वाणी-कण्ठ सुन्दर, कुटुम्ब सुन्दर, स्त्री सुन्दर, पैसा सुन्दर, महल-मकान सुन्दर। इससे क्या? यह तो जड़ की परचीज है, भगवान! उससे मैं कुछ बढ़ा हूँ और ठीक हूँ, (ऐसा माननेवाला) आत्मा का घात कर डालता है। उससे भिन्न भगवान आत्मा आनन्द का कन्द, वह अधिक है। आहाहा! ऐसा अधिकपना न मानकर बाहर की चीजों से अधिकपना माने, वह भ्रम में पड़ा है। आहाहा!

अरे! इसके अवतार की बातें वीतराग कहते हैं। इसने दुःख को भोगा। आहाहा! तू मर गया, (वहाँ) तेरी माँ को रोना आया। उस रोने के आँसुओं से समुद्र भर जाँ। स्वयंभूरमण समुद्र अनन्त भर जाँ, भगवान! ऐसा तेरी मृत्यु के पीछे रुदन हुआ था। भाई! तू ऐसे अवतार में जन्मा और मरा है। आहाहा! उस जन्म-मरण के दुःख टालने का तो यह एक ही उपाय है। सर्वज्ञ ने कहा हुआ मार्ग और सर्वज्ञ ने कहा हुआ सम्यग्दर्शन। आहाहा! बाकी दुनिया की चतुराई और समझाना आवे, न आवे, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो यह कहा, उनकी प्रवृत्ति देखकर लोग स्वयमेव भ्रष्ट होते हैं,... ऐसा भी त्याग है, पंचम काल में ऐसा भी चारित्र होता है।

मुमुक्षु : शरीर तो देखो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। क्या करना था ? आहाहा ! ऐसी क्रियाएँ तो अनेक वर्षों में ऐसी की थी कि लोग सुनते हुए काँपते थे। ऐसी बाहर की क्रिया थी। आहार लेने जाएँ, वहाँ पानी की बूँद को हाथ छू जाए (तो आहार नहीं लेते थे) निर्दोष आहार। बड़े गृहस्थ लोग, रायचन्द गाँधी पचास-पचास हजार की आमदनी, उस समय, हों ! आमदनी बड़ी, बड़ा व्यापार। क्या कहलाता है ? दिनशा का धन्धा। दिनशा का आड़तिया था। घर में आड़तिया पड़े ही हों और बड़ा व्यापार और चूरमा का लड्डू करके आधा मण रस पड़ा हो। मण का। परन्तु भिक्षा के लिये जाएँ... बहिन ! इसमें गोटलु है ? गोटलु समझे ? गोटली... गोटली। केरी की गुठली। अध मण रस पड़ा हो। आहार दे खड़े होकर। बहिन इसमें गुठली है ? गुठली नहीं। गोटलु। तो वह ऐसा कहे, महाराज ! खबर नहीं। छूना नहीं, खबर न हो तो छूना नहीं। रस नहीं लेते। ऐसा तो वर्षों का वर्षों किया है, हों ! उस समय तो माना था न। आहाहा !

इसलिए ऐसे तीव्रकषायी निषिद्ध हैं;... इसलिए अज्ञानी का तीव्र कषाय और ऐसा वर्तन, उसका निषेध किया गया है। उनकी संगति करना भी उचित नहीं है। ऐसे का परिचय करना नहीं। विशेष कहेंगे..... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)



गाथा-९

अब कहते हैं कि ऐसे भ्रष्ट पुरुष स्वयं भ्रष्ट हैं, वे धर्मात्मा पुरुषों को दोष लगाकर भ्रष्ट बतलाते हैं -

जो कोवि धम्मसीलो संजमतवणियमजोगगुणधारी।

तस्स य दोस कहंता भग्गा भग्गतणं दिति ॥१॥

यः कोऽपि धर्मशीलः संयमतपोनियमयोगगुणधारी।

तस्य च दोषान् कथयंतः भग्ना भग्नत्वं ददति ॥१॥

संयम नियम तप धर्म शील सुयोग गुणधारी सदा।
के दोष कहते भ्रष्ट वे कर भ्रष्टता की घोषणा॥९॥

अर्थ - जो पुरुष धर्मशील अर्थात् अपने स्वरूपरूप धर्म को साधने का जिसका स्वभाव है तथा संयम अर्थात् इन्द्रिय-मन का निग्रह और षट्काय के जीवों की रक्षा, तप अर्थात् बाह्याभ्यंतर भेद की अपेक्षा से बारह प्रकार के तप, नियम अर्थात् आवश्यकानिहित्यकर्म, योग अर्थात् समाधि, ध्यान तथा वर्षाकाल आदि कालयोग, गुण अर्थात् मूलगुण, उत्तरगुण - इनका धारण करनेवाला है, उसे कई मतभ्रष्ट जीव दोषों का आरोपण करके कहते हैं कि यह भ्रष्ट है, दोषयुक्त है, वे पापात्मा जीव स्वयं भ्रष्ट हैं, इसलिए अपने अभिमान की पुष्टि के लिए अन्य धर्मात्मा पुरुषों को भ्रष्टपना देते हैं।

भावार्थ - पापियों का ऐसा ही स्वभाव होता है कि स्वयं पापी हैं, उसीप्रकार धर्मात्मा में दोष बतलाकर अपने समान बनाना चाहते हैं। ऐसे पापियों की संगति नहीं करना चाहिए॥९॥